REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 6 | MARCH - 2019

18वीं सदी का मिथिला समाज

डॉ. भुवनेश्वर कुमार भारती
बी० ए०, एम० ए०, पी–एच० डी०
(इतिहास विभाग)
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वर नगर, दरभंगा

भूमिका

18वीं सदी में मिथिला की अति समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा रहीं है। पर्व – त्योहार मिथिला की संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं, जो न केवल मिथिलावासियों की धार्मिक–अध्यात्मिक आस्था से घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं, बल्कि ये सामाजिक सहमिलन के सर्वोत्तम साधन के साथ–साथ विभिन्न कलाओं की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम भी हैं। मिथिलावासियों ने अपने पर्व–त्योहारों के बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से कृषि–चक्र और मौसम चक्र से जोड़कर, इन्हें धार्मिक आधार प्रदान किया है, जिनका यहां के सामाजिक–आर्थिक जीवन में जहाँ स्वास्थ्य समस्याओं से गहरा सम्बन्ध है, वहीं पर्व–त्योहारों के अवसर पर आयोजित होने वाले उत्सवों का यहाँ की कृषि प्रणाली और स्थानीय सामाजिक–आर्थिक सरोकार के निर्धारण में एक निश्चित स्थान है। मिथिला के पर्व–त्योहार गीत, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मृदा–कला आदि विविध कलात्मक माध्यमों की ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण के साथ–साथ अपने–आप में यहाँ के इतिहास को भी समेटे हुए हैं। वस्तुतः मिथिला की संस्कृति को जानने का पर्व–त्योहार एक उत्तम जरिया है। मिथिला में पर्व–त्योहार सालो भर मनाए जाते हैं, जिनमें कुछ का चरित्र यदि अखिल भारतीय हैं, तो कुछ विशुद्धतः स्थानीय और जातीय हैं। राष्ट्रीय पर्व–त्योहार पर स्थानीय तत्व इतने प्रबल हैं कि उनका प्रायः स्थानीयकरण हो गया है। मिथिला के प्रचलित पर्व–त्योहार पौराणिक और लोक–संस्कृति के समन्वय का एक ऐसा माध्यम है, जिसके अध्ययन के द्वारा मिथिला की शस्त्रीय संस्कृति के साथ–साथ जन संस्कृति को भी बेहतर ढंग से जाना जा सकता है।

18वीं सदी से मिथिला में प्रचलित पर्व–त्योहार यहाँ के भौगोलिक परिवेश और भौतिक संस्कृति से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। कुछ पर्व–त्योहार का सम्बन्ध मिथिला के कृषि चक्र और मौसम से है, तो कुछ पर्व–त्योहारों का जातीय आधार है। प्रमुख धार्मिक पर्व–त्योहार के अतिरिक्त मिथिला में बसने वाली प्रायः सभी जातियों के अपने–अपने पर्व–त्योहार भी हैं, जो उन्हें विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान देते हैं। यह गौर तलब है कि मिथिला में प्रचलित उत्सव त्योहारों के मूल आधार अध्यात्मिक है और अधिसंख्य पर्व त्योहारों का चलन प्रायः पूर्व मध्य काल में प्रारंभ हुआ। वस्तुतः उत्तर वैदिक काल में मिथिला के आर्यीकरण के बाद यहाँ बसने वाली स्थानीय आदिम जनजातियों के साथ आर्यों का जो सांस्कृतिक संश्लेषण प्रारंभ हुआ वह पूरे प्राचीन काल में जारी रहा। पूर्व मध्य काल में आकर आर्य और आर्येत्तर जातियों के बीच हुए सुदीर्घ संश्लेषण के परिणामस्वरूप मिथिला ने एक निश्चित सांस्कृतिक पहचान बनाई। इसी काल में मैथिली भाषा और साहित्य का विकास हुआ और धार्मिक आंदोलनों के प्रभाव में सदियों से प्रचलित रीति–रिवाजों और धार्मिक विश्वासों ने उत्सव–त्योहारों के रूप में एक निश्चित रूप ग्रहण किया। उत्सव त्योहारों के उद्भव और विकास में पौराणिक अख्यानों का भी महत्वपूर्ण

योगदान था। एक तरफ जहाँ वर्णाश्रम धर्म की परिधि में आ चुकी आर्येतर जातियों के पारंम्परिक रीति–रिवाज तथा उत्सव त्योहार अपनी जातीय पहचान के साथ बनी रही, वहीं क्षेत्रीय संस्कृति के निर्माण और धार्मिक आंदोलन के प्राभाव में पौराणिक गाथाओं से युक्त पर्व त्योहारों का चलन प्रारंभ हुआ। यद्यपि बाजारवाद और भू–मण्डलीकरण के कारण आज मिथिला में प्रचलित कतिपय पर्व–त्योहारों का स्वरूप बदल चुका है और कुछ नवीन पर्व–त्योहार भी मनाये जाने लगे हैं। लेकिन अधिकांश पारम्परिक पर्व त्योहार आज भी पूरे उत्साह के साथ मनाये जाते हैं। मिथिला में प्रचलित पर्व–त्योहारों में स्थानीय, जातीय, आर्येत्तर और भौगौलिक प्रभाव को धार्मिक प्रभाव के साथ–साथ स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया जा सकता है। मिथिला में प्रचलित पर्व–त्योहारों की इन विशिष्टताओं को रेखांकित करने के लिए कुछ प्रमुख पर्व–त्योहारों का विवेचन अपेक्षित होगा।

शाह आलम द्वितीय के द्वारा अंग्रेजों की इस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई। जिससे मुगल सम्राट एवं बंगाल के नबाव का अधिकार बंगाल बिहार एवं उड़ीसा के ऊपर सीमित हो गया। क्योंकि सेना एवं राजस्व पर अंग्रेजों का प्रभुत्व एवं अधिकार सुस्थिर हो गया। केवल शांति एवं सुव्यवस्था का भार नबाव के पदाधिकारियों पर था। शाही फरमान के अनुसार न्याय की व्यवस्था तथा राजस्व प्राप्त करने का दायित्व दीवान होने के नाते इस्ट इंडिया कंपनी के ऊपर ही था। किंतु इस कंपनी ने इन कायों को भी नबाव के नौकरों के अधीन सुपूर्द कर दिया। अंग्रेजों का असली अभिप्राय इन तीन प्रदेशों से अधिक लाभ उठाने का था। इस्ट इंडिया कंपनी के सेवक वर्ग राजस्व वसूल करने की कला में पारंगत नहीं थे क्योंकि उन्हें राजस्व वसूल करने का अनुभव पूर्व से प्राप्त नहीं था। रूपयों की व्यवस्था के लिए स्थानीय अधिकारियों का सहयोग अपेक्षित था अतः इस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों में मुहम्मद रेजा खां की नियुक्ति राज्य के फौजदारी एवं अदालती विभागों की देखरेक के लिए करनी पड़ी। कंपनी के प्रतिनिधि के रूप में उसके ऊपर अदालती कार्यों का भार सौंपा गया। यह मोहम्मद रेजा खां अंग्रेजों का मित्र एवं सहायक बना। उसको मुर्शीदाबाद के ब्रिटिश रेजीडेन्ट्स से विचार विमर्श कर उसके निर्देशानुसार कार्य करना पडत्रता था। उसे स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी।

ओइनवार वंशीय कामेश्वर कुल की राजलक्ष्मी खंडवाल वंशीय महेश ठाकुर अपना पुत्र बना। ग्यारहवीं शताब्दी में दरभंगा मंडल के गंगावली (गंगौली) ग्राम से महेश ठाकुर के पूर्वज मध्य प्रदेश स्थित खंडवा ग्राम में पहुंचे हुए थे। उनके पूर्वज गंगौली ग्राम में गंगाधर थे। उनका प्रपौत्र महाविद्वान् ईश्वर भक्त धार्मिक संकर्षण जब खंडवा ग्राम में आये तो उनके सदाचार एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति से वहां के लोग बहुत प्रभावित हुए उन्हें मध्य प्रदेश का खंडवा ग्राम प्राप्त हुआ। उस ग्राम की जमींदारी भी उन्हें प्राप्त हुई जिससे राजस्थान एवं काठियावाड के धनियों के समान इन्हें भी ठाकुर उपाधि प्राप्त हुई। संकर्षण की सातवीं पीढी में चन्द्र ठाकुर उत्पन्न हुए। उनके चार सुपुत्र महाविद्वान् हुए– मैघ ठाकुर, ठेघ ठाकुर, दामोदर ठाकुर एवं महेश ठाकुर। ये सभी दरभंगा मंडल के ''मौर'' ग्राम में रहकर चतुष्पाठी निर्माण कर संस्कृत विद्या दान करने लगे। उस समय सुदूर बंगाल प्रांत आदि से विद्याध्ययन हेतु मेघावी छात्रगण आया करते थे। मौर गांव मधुबनी नगर से लगभग 9–10 मील पूरब लौहट चीनी मील के निकट है। महेश ठाकुर का आदि निवास स्थान उसी मौर ग्राम में था। एक समय अपने मैघावी शिष्य रघुनंदन के साथ महेश ठाकुर चारों भाइयों के साथ खंडवा, मंडल, रत्नपुर एवं वस्तर की यात्रा की जहां के स्थानीय शासकों ने अपने–अपने राजनगरों में उनका स्वागत किया। गौड़ क्षत्रिय कुलोद्भवा मंडलयी ख्यातनामा महारानी दुर्गावती का भी व्यवहार बड़ा ही प्रशंसनीय रहा। दुर्गावती की शादी सर्वों की अनुमति से ही नागवंशीय क्षत्री यादव राय के साथ हुई। दुर्गावती ने किसी एक भाई का शिष्यत्व भी ग्रहण किया। किसी कारणवश एक बार चारों भाईयों ने मंडल का परित्याग किया और वस्तर के राज दरवार में पहुंवे और राज्य से बहुत हाथियों का दान पाकर पुनः मंडल भी लौटे जहां राजभवन से स्वयं बाहर आकर रानी ने इन सबों का स्वागत किया। इन चारों भाईयों की योग्यता प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। फलतः एक बार सम्राट अकबर ने भी इनकी ख्याति से आकृष्ट होकर अपनी राजधानी में इन्हें आमंत्रित किया और विद्वता से प्रसन्न होकर मिथिला का राज्य देकर इन्हें सम्मानित किया। 1556 ई. की इस घटना के संबंध में कई प्रकार की अनुश्रुतियां वा किंवदन्तियां भी जुड़ी है। फलतः यह निर्णय करना थोड़ा कठिन हो जाता है कि इस खंडवला कुलीन महेश ठाकुर को मिथिला का राज्य किस प्रकार से प्राप्त हुआ। किंतु यह प्रमाणित है कि यह मिथिला राज्य इन्हें विद्याप्रेमी सम्राट अकबर से ही विद्या–व्यसनी होने तथा विद्वत्ता के प्रतिष्ठापन से ही प्राप्त हुआ था। अकबर के दरवार में विद्वानों के बीच शास्त्रार्थ चर्चा के विषय में भी मतवैभिन्य है। शास्त्रार्थ का एक विषय ईश्वर एवं उसके प्रति मानव कर्त्तव्य हैः तो दूसरा विषय ज्योतिष से संबंधित ज्योतिष का प्रत्यक्ष व्यवहार बल पर सत्य

है। इसी प्रकार इनके शास्त्रार्थ के क्रम में सर्वथा इनके शिष्य रघुनंदन का होना तथा उसके द्वारा भी शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करना है। तथा विजय में प्राप्त राज को गुरू को समर्पित करना भी एक प्रासंगिक प्रमाण है। पुनः पड़ती सायरात पर अकबर से राजकीय सनद प्राप्त कर लेने वाले ओइनवार कुलीय अधिकारी से महेश ठाकुर का मैत्रीपूर्ण समझौता तथा उसके बाद अपनी सनद के राज्य क्षेत्र पर महेश ठाकुर का राज्य शासन संचालन है। इस प्रकार यह प्रमाणित है कि महेश ठाकुर ने ही मिथिला राज्य पर खंडवाल या खंडवाला राजवंश की नींव डाली, तथा अंत अंत तक इस कुल के 20 राजाओं के राज्य किया जिसमें अंतिम महाराजधिराज डॉ. सर कामेश्वर सिंह थे।

महेश ठाकुर का मिथिला राज्य निर्माण में

मिथिला राज्य पर महेश ठाकुर ने 1556 से 1569 तक राज्य किया, इनके चार पुत्रों– रामचन्द्र ठाकुर, गोपाल ठाकुर, परमानंद ठाकुर एवं शुभंकर ठाकुर में अग्रज पुत्र रामचन्द्र ठाकुर की मृत्यु अविवाहित अवस्था में इनके ही जीवनकाल में हो चुकी थी। उस समय मिथिला राज्य की राजधानी इनके ग्राम मउर में ही थी। द्वितीय पुत्र गोपाल ठाकुर के 1569 से 1581 तक शासन के पश्चात् इनके काशी वास करने पर तृतीय पुत्र परमानंद ठाकुर ने गद्दी सम्माला। तत्पश्चात् चतुर्थ पुत्र शुभंकर ठाकुर ने मिथिला का राज्य सिंहासन सुशोभित किया। कहा जाता है कि इन्होंने ही दरभंगा के नजदीक शुभंकरपुर ग्राम बनाया तथा मिथिला राज्य की राजधानी को जन्मस्थानिक ग्राम मउर से मधुबनी के निकट के मउआरा में स्थानान्तरित किया। शुभंकर ठाकुर के पुत्र पुरूषोत्तम ठाकुर ने 1617 से 1641 तक मिथिला का राज्य किया इनके पश्चात शुभंकर ठाकुर के सातवें पुत्र सन्दर ठाकुर का राजा होना प्रामाणिक होता है जिन्होंने 1641 से 1668 तक राज्य किया। इनकी मृत्यु के उपरांत इनके महत्वाकांक्षी पराक्रमी तथा योद्धापुत्र महीनाथ ठाकुर का शासन 1688 से 1690 तक रहा तथा 1690 से 1770 ई. तक इनके भाई नरपति ठाकुर ने राज्यकाल किया। इसी महीनाथ ठाकुर को ही सिमराओ परगना के अधीश्वर वैतिया राजा गजसिंह के साथ युद्ध हुआ था। नरपति ठाकुर के पश्चात् उसके पराक्रमी पुत्र राजा राघव ठाकुर ने सिंह की उपाधि धारण की तथा 1700 से 1736 ई. तक मिथिला का राज्य किया। बिहार राजा के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित होने के बाद दहेज में बबरा परगना भी दान दिया। इन्हीं के शासन काल में कोशी अंचल तथा इसकी तलहटी की जमीन का व्यवस्थापक वीरू कुर्मी जो राज का खवास तथा प्रियपात्र था का भी विद्रोह हुआ, जिसे भी इन्होंने शमित किया तथा नेपाल तराई क्षेत्र के पंचम हाल परगना के विद्रोही राज्य मूनसिंह को भी रणक्षेत्र में मार गिराया। फिर भी ऐसे वीरयोद्धा राज्य राघव सिंह को अपने खंडवाल वंश के एक कुमार एकनाथ ठाकुर के बंगाल और बिहार के नवाव अलीवर्दी वंश से जा मिलने एवं उन्हें इनके विरूद्ध उभारने के फलस्वरूप नवाव ने इनकी 10–12 लाख की संपत्ति भी जब्त कर ली तथा इन्हें सपरिवार बंदी बनाकर पटना ले गया। तथा बाद में दो रूपये सैकड़ा की छूट के पारिश्रमिक पर मिथिला का राजस्व वसूल करने हेतु इन्हें समाहर्ता बनाया जिससे कारामुक्त होकर ये लौट आये। फिर भी इनकी मिथिला में किस प्रकार की मान्यता एवं प्रतिष्ठा थी कि कथानक है कि इसी उपलक्ष्य में इनकी कारामुक्ति के दिन भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को क्लंकित चन्द्रमा की पूजा की गई जो आजतक तिरहुत में चौथचन्दा प्रचलित है। इनके पश्चात् इनका पुत्र विसुनसिंह राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। 1739 से 1743 तक के राज्य के बाद विसुनसिंह की मृत्यु के बाद इनका अग्रज भाई नरेन्द्र सिंह ने 1743 से 1770 तक मिथिला का शासन किया।

राजा नरेन्द्र सिंह के शासन काल में निश्चित समय पर राजस्व नहीं चुकता किये जाने से दिल्ली तख्त के बादशाह का बंगाल बिहार का प्रतिनिधि शासक नवाव अलीवर्दी खां का युद्ध हुआ। इस युद्ध में नरहन राज्य के राजा अजित नारायण ने भी जमकर इनका साथ दिया और इस युद्ध में महाराजा की शानदार जीत हुई। यह युद्ध कन्दपीं घाट के युद्ध से प्रसिद्ध है। यह कंदपीं घाट कमला और बलान के बीच झंझारपुर नगर के निकट था।[2] इतना ही नहीं प्रसिद्धि है कि भौआरा के ये राजा ऐसे स्वामिमानी थे जिनका मस्तक कभी किसी सूवेदार के सम्मुख नहीं झुका था, फलतः उन शासकों की दृष्टि में ये अनुशासनहीन थे। उक्त प्रमाण इस बात के भी साक्षी हैं कि महाराजा तथा नवाब एवं सूवेदार के बीच बार–बार युद्ध हो जाया करता था। नरेन्द्र सिंह के बाद इनकी रानी पद्मावती ने 1770 तक शासन किया तत्पश्चात् नरेन्द्र सिंह का दत्तक पुत्र (एकनाथ सिंह का पुत्र) प्रताप सिंह ने वयस्क होने पर 1778–1785 तक सिंहासनारूढ होकर मिथिला का शासन किया तथा राजधानी को मौआरा से झंझारपुर स्थानान्तरित किया। इसके बाद इनका विमाता पुत्र माघो सिंह 1785–1807 तक शासन

करते रहे और इन्होंने ही राजधानी झंझारपुर से हटाकर दरभंगा में स्थापित की। यह समय लार्ड कर्नवालिस का था जिसने जमीन की दमामी बंदोवस्ती करवायी। माघो सिंह के अनन्तर छत्रसिंह ने 1807–1839 तक राज किया, 1814–15 के नेपाल युद्ध में इन्होंने अंग्रेजों की सहायता भी की तथा मारक्विकस हेस्टिंग्स से महाराजा की उपाधि भी प्राप्त की। इस प्रकार महाराजा रूद्र सिंह 1839–1850, महेश्वर सिंह 1850–1860 ने मिथिला की गद्दी को सुशोभित किया। तत्पश्चात् कुमार पुत्र लक्ष्मीश्वर सिंह नावालिग रहने की वजह से कोर्ट ऑफ वार्डस का शासन रहा। किंतु वयस्कता प्राप्त करने पर लक्ष्मीश्वर सिंह ने 1880–1898 तक राज्य किया और ब्रिटिश सरकार से के.सी.आई.ई. तथा जी.सी.आई.ई. की उपाधि प्राप्त की। आप लोक हितैषी तथा उदारमना शासक थे। विद्वानों का दरवार में आदर होता था। प्रजा के शुभचिंतक होने के नाते सड़क पुलों, चिकित्सालयों, विद्यालयों, देवमंदिरों आदि का भी निर्माण किया, कला को प्रोत्साहित किया।

महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह की मृत्यु के उपरांत इनके छोटे भाई महाराज रामेश्वर सिंह 1898 ई. में सिंहासनस्थ हुए। इन्हें ब्रिटिस सरकार की ओर से अन्य उपाधियों के अतिरिक्त महाराजाधिराज का सनद प्राप्त था। अपप भी अग्रज महाराज के ही पथगामी निकले। अपनी निर्माण प्रियता के रूप में भारत के प्रमुख नगरों में राजभवन बनवाये, मंदिरों का निर्माण कराया। मधुबनी के राजनगर में विशाल राजप्रासाद बनवाया, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में महामना मालवीय जी के साथ हाथ बटाया। आप स्वयं विद्वान होकर विद्यानुराग में विद्या प्रचार हेतु सर्वप्रकारण प्रयत्नशीन रहे जिन्हें डाक्टर ऑफ लिटरेचर की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके दो पुत्रों कामेश्वरसिंह तथा विश्वेश्वर सिंह में से कामेश्वर सिंह 1929 ई. में महाराजाधिराज के रूप में मिथिला के राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। अपने पूर्वज महाराजाओं की तरह ये भी निर्माणप्रिय, कलाप्रिय, शिक्षाप्रिय एवं जनहितैषी महाराज हुए। इन्होंने अपने प्रगतिशील विचारों का राज्य कर्त्तव्य के साथ समाहार किया। इनकी रूचि मात्र अपनी राज्य सीमा के शासन एवं राजनीति में ही लिपटी नहीं रहकर देश की राजनीति के प्रति भी प्रतिबद्ध हुई। फलतः इन्हें विदेशों की भी यात्रा करनी पड़ी तथा भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के रूप में अंग्रेज सरकार के नीतिज्ञ अधिकारयिों के साथ भारतीय राजनीतिक स्थिति पर भी विचार विमर्श में भाग लिया था। मात्र परंपरा का ही पालन करने वाले होते तो समुद्र पार कर विदेश यात्रा कदापि नहीं किये होते देश की स्वतंत्र संग्राम में भी इन्होंने राजनीतिकों, नेताओं की सहायताएं की तथा उनका साथ दिया। जनता की सेवा के लिए इन्होंने शिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त चिकित्सालयों का भी निर्माण किया जिसका प्रतीक रूप आज भी दरभंगा में पूअर होम आई हास्पीटल है, राज अस्पताल की जहां संस्कृत विश्वविघलय का आयुवैदिक औषधालय है। इन्होंने दरभंगा मेडिकल कॉलेज की स्थापना की प्रारंभिक अवस्था में जबकि वह मेडिकल स्कूल के रूप में था की स्थापना में भी इनका जबर्दस्त हाथ था शिक्षाविद् तथा शिक्षाप्रिय होने के नाते पंडितों, विद्वानों को समादर देने के साथ–साथ राज्याश्रित भी रखते थे। विविध प्रकार की पुस्तकों का विशाल संग्रह भी इस राज्य की धरोहर थी जो आज भी संस्कृत विश्वविद्यालय राजपुस्तकालय के अंग रूप में स्तंभ स्वरूप है। कलाप्रियता का प्रतीक विभिन्न प्रकार की बहुमूल्यक कलाकृतियों का संग्रह है जो आज महाराजाधिराज लक्ष्मीश्वर सिंह संग्रहालय आदि रूपों में सरकार द्वारा संरक्षित है। दरभंगा राज की गरिमा को बढ़ा ही रहा है। विद्याप्रेमी का विशद धारक होने के रूप में अनेक संस्कृत संस्थाओं की स्थापना एवं निर्माण के साथ ही अपने विशाल आनन्दबाग भवन का दान देकर कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना करवायी, मिथिला संस्कृत स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध संस्थान जैसी विश्व प्रसिद्ध संस्थान की स्थापना करवायी। देश की राजनीति से प्रेम रखने की वजह से भारतीय संध राज्य के सदस्य भी रह चुके थे। कनिष्ठ भ्राता राजा विशेश्वर सिंह भी राजनगर का विशाल एवं दर्शनीय राजप्रासाद में निवास करते हुए अंचल की राज्य व्यवस्था का संचालन कराते हुए दरभंगा जिला परिषद के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया था। आज महाराजा के कनिष्ठ भ्राता विश्वेश्वर सिंह के पुत्र जीवेश्वर सिंह राज–वैभव को वर्तमान उत्तराधिकारी है कुमार शुमेश्वर सिंह का आज भी राज की अन्य व्यवस्थाओं के साथ राजनीतिक प्रवेश मिथिलावासियों का सचेष्ट एवं जागरूक बनाये हुए हैं। बिहार में पंडित विनोदानंद झा के मुख्यमंत्रित्व काल भारत पर आक्रमण के समय उनके वजन के तुल्य स्वर्णदान भी राज दरभंगा के देशप्रेम एवं राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है।

मिथिला में प्रचलित पचाँग

मिथिला में प्रचलित पचाँग के अनुसार पर्व का प्रारंभ श्रावण महीने से होता है और इस महीना का प्रथम उल्लेखनीय त्योहार कृष्ण पक्ष की पंचमी तिथि को मनाया जाता है, जिसे मोना पंचमी कहा जाता है। यह मूलतः स्त्रियों के द्वारा मनाये जाने वाला पर्व है, जिसमें कच्चे घर–आँगन को गाय के गोबर से लीपकर घर के द्वार के सामने गोबर से नाग–नागिन का चित्र बनाया जाता है। इसे सिंदूर और चावल के आंटे से बने लेप से अलंकृत किया जाता है। इस अवसर पर गीली मिट्टी का एक पिण्ड बनाकर उसे भी अलंकृत किया जाता है। पुनः नीम, नींबू, अनार, धान का लावा और आम अथवा आमचूर नाग देवता को चढ़ाया जाता है। स्थानीय बोली में नाग देवता को विषहरा कहा जाता है। मोना पंचमी के दिन मिथिला के कई हिस्सों में पुरूषों के द्वारा भी नाग पूजा किये जाने और विभिन्न तरह के करतब दिखाने वाले भगतों का प्रदर्शन भी होता है। उसी दिन लोग एक विशेष प्रकार का जड़ी पहनते हैं जिसे इसरगत कहा जाता है। लोक धारणा के अनुसार इस इसरगत धारण करने वाले को साँप नहीं काटता है। मोनापंचमी के दिन से पूरे श्रावण महीने में मिथिला में विषहरा (नाग) पूजा का एक ऐसा रिवाज है जिसमें महिलायें तथा लड़कियाँ माथे पर बाँस अथवा सिकी (एक प्रकार का तृण) से बने अन्न–पात्र (मौउनी) डाला लेकर गीत गाते हुए विषहरा के लिए घर–घर घूमकर भीख मांगती हैं और फिर भीख में प्राप्त अनाज से विषहरा स्थान या गहबर में धूम–धाम से नाग देवता की पूजा की जाती है। उल्लेखनीय है कि मिथिला के अनेक गाँवों में ऐसे विषहरा स्थान बने हुए है जहाँ इस प्रकार की पूजा और भगतई आदि किये जाते हैं। नाग पूजा की यह आर्यतर परम्परा सदियों से मिथिला में विद्यमान है।

मोनपंचमी के दिन से मिथिला की नवविवाहित लड़कियाँ फूल और कई प्रकार की पत्तियाँ तोड़कर उनसे एक विशेष प्रकार का पूजन अभियान प्रारम्भ करती हैं जिसे मधुश्रावणी कहा जाता है। मधुश्रावणी पर्व में पूजा स्थल पर चावल के लेप से चौकोर आलेपन किया जाता है और उसके सामने बालुका राशि पर दो अलंकृत विशेष प्रकार के मृदभांड रखे जाते हैं, जिनमें एक को पुरहर एवं दूसरे को पातिल कहा जाता है। मोनापंचमी से प्रारंभ कर आमावस्या तक लगातार प्रतिदिन दिन में संग्रहित फूल और पत्तियों की सहायता से पूजा स्थल पर अपराह्न बेला में विधिपूर्वक अनुष्ठान किया जाता है, जिसके समापन के समय नवविवहिता के पति के द्वारा दीप की जलती हुई बत्ती से उसके घुटने पर दागने की अमानवीय प्रथा भी प्रचलित है। यह उल्लेखनीय है कि मधुश्रावणी का पर्व हिन्दू समाज के सवर्ण जातियों कें बीच ही प्रचलित है।

श्रावण महिने में ही कृष्ण झूला और राखी का त्योहार भारत के अन्य हिस्सों की तरह ही मिथिला में भी मनाया जाता है, जिनमें कृष्ण झूला का चलन जहाँ धीरे–धीरे कम होता जा रहा है वहीं बाजारवाद के प्रभाव में राखी का त्योहार आज अधिक लोकप्रिय हो रहा है। यह उल्लेखनीय है कि मिथिला परिक्षेत्र में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक राखी भाई बहन का प्रमुख त्योहार न होकर पुरोहितों के द्वारा अपने यजमानों को धागा बाँधने का पर्व था। आज भी भाई बहन के त्योहार के साथ–साथ राखी पर्व की यह परम्परा मिथिला में कायम है।

भादव महीने में मनाये जाने वाले पर्व–त्योहारों में कृष्णाअष्टमी, हरितालिका, चौठचन्द्र, और अनन्त चतुर्दशी के पर्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिनमें चौठ चन्द्र पर्व की अतिविशिष्ट परम्परा मिथिला में विशेषतौर पर कायम है। भादव महीने के अन्य पर्व जहाँ उत्तर भारत में सामान्य रूप से मनाये जाते हैं, वहाँ चौठ चन्द्र का पर्व विशुद्धतः मिथिला का स्थानीय त्योहार है। भादव शुक्लपक्ष की चुतर्थी तिथि में मनाये जानेवाले इस पर्व में मिथिला की स्त्रियाँ सुस्वाद पकवानों, खीर, दही, दालभरी हुई पूरियाँ और उपलब्ध मौसमी फल अनुष्ठान पूर्वक चतुर्थी की चन्द्रमा को चढ़ाती हैं।

श्रावण और भादव के महीने में अलग–अलग जातियों में अलग–अलग तिथियों को अपने–अपने कुल–देवता को पूजने की लम्बी परम्परा मिथिला में कायम है। कुल देवता के नाम के अनुसार अलग–अलग जातियों या परिवारों में इस पूजा अनुष्ठान का अलग–अलग विधान भी हैं, जिसे घड़ी पावनि कहा जाता है। कुछ जातियों में यह घड़ी पूजा वार्षिक होता है, जबकि पारिवारिक परम्परा के अनुसार कुछ परिवारों में घड़ी पर्व चार महीनों के अन्तराल पर पूरे वर्ष मनाया जाता है। अमातौर पर इस पर्व में कुल–देवता को खीर, मिष्ठान और पकवान अर्पित किये जाते हैं किन्तु आज भी मिथिला के अधिसंख्य परिवारों में कुल देवता को पशुबलि के तौर पर छागर (बकड़ी का नर बच्चा) अर्पित किया जाता है।

आश्विन महीने में जहाँ उत्तर भारत में प्रचलित पितृपक्ष, मातृनवमी और दुर्गापूजा का व्यापक चलन मिथिला में भी है वहीं जितिया और कोजागरा का विशेष पर्व स्थानीय तौर तरीकों से मिथिला में मनाया जाता

है। जितिया पर्व अश्विन महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को प्रदोष काल से प्रारंभ होकर नवमी तिथि के प्रदोष काल तक मनाया जाता है। इसमें स्त्रियाँ निराहार रहकर अपने संतान के दिर्घायु की कामना करती हैं। इस पर्व की तैयारी के तौर पर सप्तमी को उपवास रखने वाली महिला मरूआ की रोटी और मछली खाती हैं जबकि परिवार के बच्चों को रात्रि के तीसरे पहर में घर के दरवाजे पर बैठाकर पकवान अथवा मिठाई खिलाया जाता है। कोजागरा पर्व शरद पूर्णिमा की रात्रि में मनाया जाता है। इस अवसर पर पान, मखान और मिष्ठान से मिथिला की स्त्रियाँ अनुष्ठानपूर्वक लक्ष्मी पूजन करती हैं। सवर्ण नवविवाहितों के लिए कोजगरा मिथिला का विशेष पर्व माना जाता है, जिस दिन नवविवाहित वर अपने साले के साथ कौड़ी से पच्चीसी खेलता है और परिजन लोग इस रात विभिन्न उपायों से आन्नद मनाते हैं। कोजागरा की रात्रि तांत्रिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण माना गया है, जिस रात मिथिला के तंत्र साधक श्मशान अथवा शक्ति पीठों में तंत्र साधना करते हैं। यह गौरतलब है कि तांत्रिक परंपरा में अमावस्या को साधना का उपयुक्त दिन माना गया है, जबकि मिथिला में अमावस्या के साथ–साथ शरद पूर्णिमा ऐसा दिन है जब पूर्ण चन्द्रमा को संमुख मान साधक साधना करते हैं।

मिथिला में तंत्रवाद का प्रभाव

मिथिला में तंत्रवाद का प्रभाव इतना अधिक प्रबल रहा है कि न केवल कोजागरा बल्कि आश्विन मास में मनाया जाने वाला प्रसिद्ध नवरात्रि पर्व भी तंत्र साधना और जादू टोना सीखने के लिए उपयुक्त अवसर माना जाता है। यह उल्लेखनीय है कि इस अवसर पर सिद्धसाधक अपनी साधना को परिमार्जित करते हैं और जिज्ञासु व्यक्ति जदूटोना और तंत्र मन्त्र सीखने की दीक्षा लेते हैं एवं उनका अभ्यास प्रारम्भ करते हैं।

कार्त्तिक महीने में कई ऐसे पर्व मनाए जाते हैं जिनमें स्थानीय जातीय और कौलिक प्रभावों को स्पष्ट रूप से परिलक्षित किया जा सकता है। कार्तिक महीने के स्थानीय पर्व में गवहा संक्रान्ति का विशेष महत्व है, जो इस महीने की तुलाराशि की संक्रान्ति को मिथिला की स्त्रियों और कुवाँरियों द्वारा मनाया जाता है। यह पर्व कृषि–चक्र से जुड़ा हुआ है। इस मौसम में अगहनी धान की बाली तैयार होती है, जो समृद्धि की सूचक है। मिथिला की स्त्रियाँ भावी जीवन की समृद्धि कामना उपवास रखकर करती हैं। कार्त्तिक महिने का दूसरा महत्वपूर्ण स्थानीय पर्व हरिसों कहलाता है, जो कार्त्तिक शुक्ल की प्रथम तिथि से प्रारंभ होता है। महीने भर चलने वाला यह पर्व कुमारी कन्याओं के द्वारा मनाया जाता है, जिसमें कन्याएँ के अच्छे–वर की प्राप्ति की कामना विविध प्रकार के पूजा–विधानों के द्वारा करती हैं, जिसका समापन अगहन महीने के शुक्ल पक्ष में प्रथम तिथि को होता है। कार्तिक के शुक्ल पक्ष को ही द्वितिया तिथि को भ्रातृद्वितिया पर्व मनाने की पुरानी और प्रशस्त परम्परा कायम है। यह पर्व राखी की अपेक्षा मिथिला में अधिक महत्वूपर्ण माना जाता है, जिसमें बहन अपने भाई के स्वस्थ एवं दिर्घायु जीवन की कामना अनुष्ठान के माध्यम से करती हैं। कार्त्तिक महीने के शुक्लपक्ष में ही भाई बहन का एक अन्य महत्वपूर्ण त्योहार सामा–चकेबा है, जिसमें मिथिला की स्त्रियाँ मिट्टी की विभिन्न प्रकार की आकृतियाँ बनाकर गीतों के माध्यम से सामा खेलती हैं और अपने भाई के सुखद भावी जीवन की कामना करती हैं। कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि में कहीं–कहीं भाई के द्वारा मिट्टी की मूर्तियों को तोड़ने और कहीं–कहीं इन्हें जल में प्रवाहित करने की परम्परा है। गौरतलब है कि सम्भवतः पर्व–त्योहारों के मामले में मिथिला में कार्त्तिक महीना सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। पूरे महीने लगातार व्रत–उपवास और त्योहारों का सिलसिला जारी रहता है। उसी महीने मिथिला के वृद्ध–जन गंगा के किनारे सिमरिया घाट में पूजा अराधना करते हुए पूरा महिना बिताते हैं, जिसे कल्पवास या मास कहा जाता है। इस महीने आमतौर पर मिथिला के गाँवों में प्रातः स्नान और कथा सुनने की परम्परा भी है, जिसे कार्तिक कृत्य कहकर पुकारा जाता है। कार्त्तिक महीने में एक अन्य व्रत भी मिथिला के वृद्ध जन करते हैं जिसे चन्द्रायन व्रत कहा जाता है। इसके व्रती कार्त्तिक कृष्णपक्ष के प्रथम तिथि से अपना भोजन घटाना प्रारंभ करते हैं जो प्रतिदिन क्रमशः घटते हुए महीने के अंतिम दिन शून्य पर पहूँच जाता है। बाँस को मिट्टी में गाड़कर और उसके उपरी छोड़पर प्रतिदिन संध्या में मिट्टी के बर्तन में आकाशदीप जलाते हैं और पौराणिक कथाओं का श्रवण करते हैं। इस व्रत का समापन उत्सव के रूप में होता है, जिस दिन ब्राह्मणों को दान दक्षिणा के साथ–साथ प्रीतिभोज कराया जाता है।

मिथिला का सामाजिक व्यवस्था

मिथिला का सामाजिक व्यवस्था भी परम्परा पर ही आधारित था परम्परा पर आधारित होने के कारण नारी के प्रति उस समाज का वही दृष्टिकोण था जो पूर्व के समय में समाज का था। जिसमें पत्नी को यह आदेश दिया जाता था कि वह अपने दरिद्र और गुणहीन पति की भी देवता मनकर सेवा करे। इस सेवा में चूकने पर वह दण्ड और नरक का भागी बनती थी। विवाहित स्त्रियों को घर से बाहर आने–जाने की स्वतंत्रता नही थीं। पति की इच्छा के विरूद्ध कार्य नहीं कर सकती थी। मिथिला की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार–यदि कोई स्त्री अपने पति के कुल, धर से बाहर जाए तो उसे छः पण का दण्ड दिया जाय। किन्तु यदि वह भय के कारण भागे तो अदण्डय समक्षी जाय। पति के रोकने पर भी यदि कोई स्त्री धर से भागे तो अदण्डय समक्षी जाय। पति के रोकने पर भी यदि कोई स्त्री धर से भाग निकले तो उस पर बारह पण दण्ड किया जाय। यदि वह पडोसी के ही धर में चली जाय तो उसे छःपण का दण्ड दिया जाय इतना ही नही वह अपने पति की आज्ञा के बिना पडोसी को अपने धर में पनाह देने, भिखारी, को भिक्षा देने और व्यापारी को किसी तरह का माल देने वाली स्त्री को बारह पण दण्ड दिया जाता था। यदि कोई स्त्री निषिद्व व्यक्तियों के साथ यही व्यवहार करे तो उसे प्रथम साहस दण्ड तथा निर्दिष्ट सीमा के धरों से बाहर जाने पर चौबीस पण दण्ड दिया जाता था। वह किसी स्त्री तक को विपरित की दशा के अतिरिक्त, अपने घर में आने नहीं दे सकती थी। दूसरे की पत्नी को अपने धर में आने देने पर उसके लिए 100 पण दण्ड का विधान था।

पति के घर से भागकर सुदूर गांव में जाने वाली स्त्री को बारह पण दण्ड के साथ–साथ उसके नाम से जमा पूजी तथा उसके आभूषण आदि को जब्त कर लिया जाता था। यदि वह मैथुन के लिए किसी पुरूष का सहवास करे तो उस पर चौबीस पण का दण्ड दिया जाता था और उसे यज्ञादि धर्मकायों मे उसको सहधर्मिणी के अधिकार से बंचित किया जाता था। इसके अतिरिक्त यदि कोई स्त्री मार्ग, जंगल या किसी गुप्त स्थान में अथवा किसी संदिग्ध या वर्णित पुरूष के साथ मैथुन के लिए धर से बाहर निकलती हौ तो उसे गिरफ्तार कर अपराध के अनुसार दण्ड देने का विधान था। लेकिन कुछ विशेष परिस्थिति में जैसे–मुत्यु बीमारी, विपत्ति और प्रसव काल मे स्त्री को अपने संबंधियों के यहां आने–जाने की छूट थी।

यद्यपि मिथिला के सामाजिक इतिहास में स्त्रियों को पूनर्विवाह की अनुमति प्रदान की गई है और पति की मृत्यू हो जाने पर पत्नी का पुनर्विवाह कर लेना समुचित माना गया है। वहीं विवाह संबंध का उच्छेद करने का भी विधान है। शाल्य, निर्वाह धन, की व्यवस्था–रहित स्त्री अपने पतियो की अनुमाति से पुनर्विवाह कर सकती थी। जिनके पति सुदुर देशों में दीर्धकाल तक रह जाते या अधिचिकित्स्य रोगों से पीडीत होते या पुःषत्वहीन होते, वैसी, स्त्रियां पुनर्विवाह कर सकती थी। विधवाओं को अपने पति के भाइयों से विवाह करने की अनुमति दी गई थी।

इस काल में कुछ ऐसी स्त्रियों की भी सत्ता थी जो गणिका, रूपाजिवा तथा दासी आदि के रूप में जीवन निर्वाह किया करती थी। गणिका को राज प्रासाद के सभी कर्मचारियों के मनोरंजन और काम तृप्ति के साथ–साथ राजाज्ञानुसार अन्य पुरूषो की भी इच्छा पूर्ति करनी पड़ती थी। अन्यथा उसे दण्ड का भागी बनाना पड़ता था। यह दण्ड एक सहस्त्र शिफा, कोरो, या पांच सहस्त्र पण जुर्माणा के रूप में देना होता था। रूपाजीवा नगर के बाहर दक्षिण के भाग मे बसती थी। रूपाजीवा के काम धन्धा को सुचारू रूप से चलाने के लिए बन्धकिपोषक होता था जिसकी नियुक्ति राजा द्वारा होती थी और वे रूपाजीवा से विभिन्न तरह का लाभ उठाते हुए राजा को उससे कर वसूल कर देते थे। मौर्यकाल ''पेशलरूपा दासी'' भी थी जो मदिरालय में रहकर ग्राहको का मनोरंजन करती थी।

मनु के अनुसार ही यत्र नार्यल्य पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवताः की भांति भी कुछ अर्थो में नारियों का आदर करना राज्य का एक प्रमुख कर्त्तव्य माना गया है प्रौढ़ कन्या के साथ उनकी सम्मति के बावजूद भी सहवास और वैसे अन्य अप्रकृतिक अपराधों के लिए दण्ड शुल्क लगाया जाता था। स्त्री अयोनौ गच्छतः पुरूष अधिगेहतश्य मैथुनम वा साहस दण्डम। गणिकाओं एवं दासियों की कन्याओं तक को रज्य की ओर से रक्षा की जाति थी। दासियों अवध्य समक्षी जाती थी और प्रसव के संदर्भ में शिशु व माता दोनों को मुक्ति दी जाती थी। विधवाओं एवं अनाथों के प्रति अत्याचार करने से कठोर दण्ड दिया जाता था। नारी के प्रति कौटिल्य की इस धारण को कुछ अर्थे में भले ठीक कह दें लेकिन इस आदर के पिछे एक साजिश थी। गणिका और रूपाजिवा की पुत्री ही आगे चलकर रूप यौवन को प्राप्त कर राजा से लेकर उसके कर्मचारीयों का मनोरंजन करने की अधिकारणी

होती थी। इस स्थिति में उसकी रक्षा स्वाभाविक थी। यदि वैसी रूपाजीवा और गणिका की कन्याएं को राज्य की ओर सुरक्षा प्रदान कर उसे इस कार्य से मुक्त रखा जाता, उसका विवाह अच्छे कुल में होता तो उस स्थिति में कौटिल्य प्रणम्य होते। समाज को स्त्रियों का परिव्राजिका बनना भी पसंद नहीं था। यदि कोई स्त्री परिव्राजिका बनती थी तो उसे पूर्व साहस दण्ड देने का विधान था। पिता की सम्पति मे भी लड़कियों का अधिकार नहीं था। ''सुवर्ण,'' आभूषण एवं नकदी जा भी रिक्ध धन है उसके अधिकारी लड़के है, लड़को के अभाव में वे लड़कियो रिक्ध धन की अधिकारी है, जो धर्म विवाहों से पैदा हुई है। स्त्रियो का कार्य क्षेत्र पुरूषों से भिन्न था। स्त्रियों प्रायः धर मे ही रहा करती थी और कुलवधुओं के लिए सार्वजनिक कार्यो में स्वतंत्रता से भाग लेने की कोई व्यवस्था नही थी। शिक्षा से वंचित होने पर साधारण रूप में स्त्रियों का मानसिक क्षितिज संकुचित होता था। वे नाना प्रकार के विधि–विधानों में विश्वास करती थी।

सारांश

तत्कालीन नीति निर्धारकों की सम्मति में स्त्रियों का मुख्य प्रयोजन संतान की संतानोत्पति ही था जिसे अनेक विध–वन्धनो मे रहना पड़ता था। नारी से संबंधित उपर्युक्त मान्यताओं के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज में नारी पूर्ण रूप से परतंत्र थी। पुरूष की इच्छा पर ही उसके जीवन का संचालन होता था। यह पुरूषों के हाथो की कठपुतली बनी हुई थी। जिसे पुरूष अपनी इच्छानुसार नचाता था, दूसरे रूपों में यह कहा जा सकता कि नारी पुरूष के हार्थो का हैण्ड बैग बनी हुई थी जिसका खोलना और बन्द करना पुरूष की इच्छा पर निर्भर करता था।

संदर्भ श्रोत

1. ऋग्वेद मंडल–10, सुक्त संख्या–17,
2. दीध–निकाय–1, पृ0 स।–111.
3. शूद्रधर्माणें वा अन्यत्र चण्डालेभ्यः। कौटिल्य अर्थशास्त्र–अधिकरण–3 अध्याय–7, कांगले आर0 पी0 द्वारा संपादित, बम्बई–1958 .
4. चण्डालानां श्मशानान्ते वासः। कौटिल्य अर्थशास्त्र–अधिकरण–2, अध्याय–4, कांगले आर0 पी0 द्वारा संपादित बम्बई–1958.
5. विधालंकार डा0 सत्यकेतु, मौर्यसाम्राज्य का इतिहास–श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली –1986, पृ0 स।–387,
6. विधलंकार डा0 सत्यकेतु, मौर्यसाम्राज्य का इतिहास श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली –1986, पृ0 स।–387 .
7. कृष्णा राव डा0 एम0 बी0, कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण, अनुवादक विश्वेश्वरययया जी रतन प्रकाशन मंदिर देहली–1961, पृ0 स।–120,
8. केन0 पी0 भी0, हिस्ट्री आंफ द धर्मशास्त्र भौलयूम–1 पृ0 स।–18, कलकत्ता–1930,.
9. कृष्णाराव डा0 एम0 वी0, कौटिल्य अर्थशस्त्र का सर्वोक्षण अनुवादक विश्वेश्वरैययया–जी0, रतन प्रकाशन मंदिर देहली–1961, पृ0 स।–121 .
10. चौधरी राधाकृष्ण, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास–जनकी प्रकाशन नई दिल्ली–1986, पृ0 स।–282.
11. विधालंकार डा0 सत्यकेतु, मौर्य साम्रज्य का इतिहास श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली–1987. पृ0 स।–387 .
12. कौटिल्य अर्थशस्त्र–अधिकरण–3, अध्याय–18, व्याख्याकार वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विधाभवन, वाराणसी–1984 .
13. एस0 बी0 ई0, मनुस्मृतिः 1–13,
14. कृष्णराव डा0 एम0 वी0, कौटिल्य अर्थशास्त्र का सर्वेक्षण अनुवादक विश्वेश्वरैययया जी0 रतन प्रकाशन मंदिर देहली–1961, पु0 स।–121 .
15. कौटिल्य अर्थशास्त्र–अधिकरण–3 अध्याय–13, व्याख्याकार वाचस्पति गौरोला चौखम्बा विधा मंदिर भवन।
16. कौटिल्य का अर्थशास्त्र अधिकरण–4, अध्याय–1, व्याख्याकार वाचस्पति गौरोला चौखम्भा विधा भवन वाराणसी–1984 .
17. झा, डी0 एन0 प्राचीन भारत एक रूपरेखा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली–1980, पृ0 स।–73,